Think IAS...

दृष्टि The Vision

Think Drishti

संघ लोक सेवा आयोग (UPSC)

इतिहास (वैकल्पिक विषय)

आधुनिक भारत (भाग-3)

दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम (Distance Learning Programme)

Code: CSHS07

संघ लोक सेवा आयोग (UPSC)

इतिहास (वैकल्पिक विषय)

आधुनिक भारत (भाग–3)

641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
दूरभाष : 011-47532596, 8750187501
टोल फ्री : 1800-121-6260
Web : www.drishtiias.com
E-mail : online@groupdrishti.com

पाठ्यक्रम, नोट्स तथा बैच संबंधी updates निरंतर पाने के लिए निम्नलिखित पेज को "like" करें
www.facebook.com/drishtithevisionfoundation
www.twitter.com/drishtiias

UPSC DLP

विषय सूची (Contents)

20.	अलगाववाद की राजनीति	5–29
21.	राष्ट्रीय आंदोलन में नारी एवं छात्रों की सहभागिता	30–38
22.	संवैधानिक विकास	39–60
23.	स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान वामपंथी आंदोलन	61–75
24.	मज़दूर संघ एवं स्वतंत्रता आंदोलन	76–84
25.	स्वतंत्रता तथा भारत का विभाजन	85–98
26.	वैज्ञानिक और तकनीकी उपलब्धियाँ	99–120
27.	नेहरू की विदेश नीति : गुटनिरपेक्षता एवं पंचशील	121–135

अध्याय
20

अलगाववाद की राजनीति (Politics of Separatism)

20.1 सांप्रदायिकता के उदय के कारण	20.4 राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
20.2 सांप्रदायिकता का विकास	20.5 पाकिस्तान प्रस्ताव तथा 'द्वि-राष्ट्र' सिद्धांत
20.3 हिंदू सांप्रदायिकता का उदय	20.6 1946 के चुनाव तथा सांप्रदायिक दंगे

आधुनिक भारत के उदय तथा उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष का एक पहलू था सांप्रदायिकता का उदय तथा विकास, जिसके कारण स्वतंत्रता के साथ-साथ भारत का विभाजन भी हुआ। राष्ट्रवाद की तरह सांप्रदायिकता भी आधुनिक घटना थी तथा देश की आर्थिक, राजनीतिक तथा प्रशासनिक एकता के विकास की प्रक्रिया का परिणाम थी। जहाँ राष्ट्रवाद इस वस्तुपरक परिस्थिति का सकारात्मक प्रतिबिंब था, अर्थात् ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरुद्ध भारतवासियों के सामान्य हितों के एकीकरण का प्रतीक, वहीं सांप्रदायिकता इसकी विकृत अभिव्यक्ति थी जो भारत के उन क्षेत्रों तथा समाज के उन वर्गों एवं समुदायों में पनपी जो राष्ट्रीय चेतना के प्रति जाग्रत होने में असफल रहे। यह पिछले 100 सालों की ऐतिहासिक प्रक्रिया की झूठी चेतना (False consciousness) का प्रतीक थी। जैसा नेहरू ने लिखा, 'किसी को यह नहीं भूलना चाहिये कि सांप्रदायिकता एक ऐसी प्रक्रिया है जो हमारी आँखों के सामने विकसित हुई है'।

- प्रसिद्ध इतिहासकार बिपिन चन्द्र के अनुसार, सांप्रदायिकता के तीन मूल तत्त्व होते हैं:
  1. यह धारणा कि समान धर्म वाले लोगों के गैर-धार्मिक हित (आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि) भी साझे होते हैं।
  2. भारत जैसे बहु-धार्मिक समाज में किसी एक धर्म विशेष के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक हित दूसरे धर्म के अनुयायियों से पृथक् एवं भिन्न हैं।
  3. सांप्रदायिकता अपनी चरम सीमा पर तब पहुँचती है जब विभिन्न धर्मों के हितों को परस्पर विरोधी, विद्वेषी, शत्रुतापूर्ण तथा प्रतिकूल माना जाता है।
- सांप्रदायिक विचारधारा का जन्म तब होता है जब कुछ व्यक्ति अथवा समुदाय इस धारणा में विश्वास रखते हैं कि समान धर्म के लोगों के सामाजिक, आर्थिक हित भी समान हैं। इसमें धर्म पर आधारित सामाजिक-राजनीतिक समूहों का जन्म होता है।
- इसका दूसरा चरण तब शुरू होता है जब कोई व्यक्ति अथवा समुदाय सांप्रदायिक राजनीति में विश्वास करना आरंभ कर देता है, एक ऐसी धारणा में विश्वास कि विभिन्न धार्मिक समुदायों के अपने विशिष्ट हित होते हैं परंतु इन हितों में सामंजस्य नहीं लाया जा सकता है।
- तीसरी अवस्था तब आती है जब इन धार्मिक मतभेदों को धर्मनिरपेक्ष सांसारिक मतभेदों में बदल दिया जाता है तथा इन परस्पर हितों में कोई तालमेल नहीं देखा जाता। अपने राजनीतिक विरोधियों को यह (सांप्रदायिकता) दुश्मन मानती है तथा उनके विरुद्ध युद्ध की भाषा का प्रयोग करती है। इस चरण में एक विशिष्ट राष्ट्र अथवा दो-राष्ट्र जैसे सिद्धांतों का प्रचार किया जाता है।
- भारत के संदर्भ में 1930 तक सांप्रदायिक विचारधारा अपने दूसरे चरण में थी। जब यह धारणा सामान्य थी कि सांप्रदायिक हितों में सामंजस्य लाया जा सकता है, परंतु 1940 के बाद 'एक पृथक् राष्ट्र' के नारे के रूप में यह अपने उग्रवादी चरण में पहुँच गई जिसकी चरम सीमा हमें विभाजन के रूप में देखने को मिली।

- सांप्रदायिकता के विकास में ब्रिटेन की 'फूट डालो और राज़ करो' की नीति ने भी काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। ब्रिटिश सरकार की इस भूमिका के पीछे उनके आत्म संरक्षण का सवाल जुड़ा हुआ था। भारतीय जनता को गुटों में बाँटकर तथा एक को दूसरे से लड़ाकर ही साम्राज्य की रक्षा की जा सकती थी। इस नीति के दो औचित्य प्रदान किये गए–
  - भारत में कई विरोधाभासी सामाजिक संप्रदाय हैं, जो कभी भी एकल राष्ट्र में परिवर्तित नहीं हो सकते हैं।
  - नस्ल, भाषा, धर्म, जाति तथा रीति-रिवाज़ों पर विभाजित इन समुदायों की भीड़ में किसी ऐसे केंद्रीय प्रतिनिधि को खोजना असंभव है जिसे राष्ट्र की आत्मा कहा जा सके तथा जिसे सभी समुदायों का उत्तरदायित्व सौंपा जा सके।

  ब्रिटिश सरकार ने सांप्रदायिकता, विशेषकर मुस्लिम सांप्रदायिकता का प्रयोग राष्ट्रीय आंदोलन को कमज़ोर तथा विफल करने के लिये किया। मुसलमानों की सांप्रदायिक मांगें शीघ्र मान ली गईं। उदाहरण के लिये 1906 में मुस्लिम हितों की रक्षा के लिये एक पृथक् राजनीतिक दल की मांग को वायसराय ने तुरन्त स्वीकार कर लिया। 1909 के बाद मुसलमानों के लिये पृथक् क्षेत्रों के प्रावधान ने सांप्रदायिक राजनीति के विकास में एक महत्त्वपूर्ण यन्त्र का काम किया। इसी तरह 1932 में कम्यूनल एवार्ड ने मुसलमानों की प्राय: सभी मांगें स्वीकार कर लीं। द्वितीय युद्ध के दौरान मुस्लिम सांप्रदायिकता को किसी भी संवैधानिक विकास को वीटो करने का अधिकार दे दिया गया। यहाँ तक कि पाकिस्तान के विचार को भी ब्रिटिश सरकार का नैतिक तथा वित्तीय समर्थन हासिल था। मुस्लिम लीग की सफलता में ब्रिटिश शासकों के पक्षपात, निरन्तर प्रोत्साहन तथा समर्थन का उतना ही हाथ था जितना उनके अपने प्रयत्न।

  इसके विपरीत कॉन्ग्रेस की संपूर्ण मानसिकता ब्रिटिश उदारवादी विचारधारा तथा व्यवहार से प्रेरित थी। यह सांप्रदायिक समस्या का सही मूल्यांकन नहीं कर पाई। जब सैयद अहमद खाँ ने इसे पहली बार उठाया तो कॉन्ग्रेस ने इसकी अवज्ञा की। लखनऊ पैक्ट के बाद यह किसी भी समझौते के लिये सांप्रदायिक नेताओं पर अत्यधिक निर्भर हो गई तथा समस्या का वैचारिक, राजनीतिक तथा सामाजिक-आर्थिक स्तर पर बहादुरी से सामना करने की बजाय एक-एक करके उनकी मांगें मानती गई।
- स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मुस्लिम लीग तथा हिंदू महासभा दोनों के दावे गलत सिद्ध हुए। 1946 के चुनावों में हिंदू महासभा को केवल दो सीटें मिलीं। स्वतंत्र भारत ने एक उदारवादी धर्मनिरपेक्ष तथा प्रजातांत्रिक संविधान अपनाया। हिंदू महासभा विलीन हो गई। दूसरी तरफ यह धारणा भी गलत सिद्ध हुई कि हिंदू तथा मुसलमान दो पृथक् राष्ट्रीयताएँ हैं जब पाकिस्तान के पूर्वी हिस्से ने अलग होकर बांग्लादेश का निर्माण कर लिया।

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. यह स्पष्ट कीजिये कि किस कारण 1942-46 के दौरान भारत के सांविधानिक अवरोध का समाधान ढूंढने के प्रयास असफल हो गए थे। **UPSC (Mains) 2017**
2. "कृपया याद रखिए कि पृथक् निर्वाचक वर्गों को मंजूरी प्रदान करने में हम ड्रैगन के दांतों की बुआई कर रहे हैं और इसकी उपज कड़वी ही होगी।" –मोर्ले। टिप्पणी कीजिये। **UPSC (Mains) 2009**
3. "इतिहास लेखन की साम्राज्यवादी परंपरा ने भारतीय इतिहास का विभाजन धार्मिक आधार पर करके सांप्रदायिकता को बढ़ावा दिया।" आलोचनात्मक समीक्षा कीजिये।
4. औपनिवेशिक शासन व्यवस्था सांप्रदायिकता के उदय में न केवल प्रभावी घटक थी बल्कि इसने अपने हितों के अनुसार सांप्रदायिकता का पोषण भी किया। व्याख्या कीजिये।
5. मुस्लिम लीग का 'द्वि-राष्ट्र सिद्धांत' इस परिकल्पना पर आधारित था कि विभिन्न धार्मिक समुदायों के मौलिक हित न केवल पृथक् होते हैं बल्कि उनमें विरोधाभास भी होता है। भारत में सांप्रदायिकता के विकास के संदर्भ में इस कथन को स्पष्ट कीजिये।
6. क्या सांप्रदायिक आधार पर भारत का विभाजन अपरिहार्य था या इसे रोका जा सकता था? तत्कालीन परिस्थितियों के संदर्भ में विवेचना कीजिये। साथ ही यह भी बताइये कि कॉन्ग्रेस ने इसे क्यों स्वीकार किया?
7. क्या लखनऊ पैक्ट के माध्यम से कॉन्ग्रेस द्वारा मुस्लिम लीग की पृथक् निर्वाचक मंडलों की मांग को स्वीकार करना एक भूल थी? विवेचना कीजिये।

अध्याय
21

राष्ट्रीय आंदोलन में नारी एवं छात्रों की सहभागिता (Participation of Women and Students in National Movement)

21.1 भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भूमिका 21.2 राष्ट्रीय आंदोलन में छात्रों की भूमिका

21.1 भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भूमिका *(The Role of Women in Indian National Movement)*

पृष्ठभूमि *(Background)*

- राष्ट्रीय आंदोलन पर यदि हम सरसरी दृष्टि डालें तो पाते हैं कि यह मूलत: पुरुष प्रधान तथा पुरुष आदेशित आंदोलन था। परंतु समकालीन भारतीय इतिहास का एक आश्चर्यजनक पहलू था राष्ट्रीय आंदोलन में नारी वर्ग का द्रुत प्रवेश। यह प्रक्रिया भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस की स्थापना से आरंभ हो गई थी, परंतु 1919 के बाद इसमें गुणात्मक परिवर्तन आया। जहाँ **उन्नीसवीं शताब्दी में समाज सुधार के लिये नारी की समस्या** मुख्यत: सामाजिक प्रथाओं एवं रीति-रिवाज़ों, बाल-विवाह, विधवा-विवाह, सती-प्रथा, स्त्री शिक्षा जैसे मुद्दों का मिश्रण था, वहीं **बीसवीं शताब्दी में राष्ट्रवादियों के लिये** मुख्य मुद्दा था- राष्ट्र के भावी निर्माण में स्त्री वर्ग की भूमिका अर्थात् क्या उनकी सहभागिता आवश्यक है? और यदि है तो किस हैसियत में? एक समान साथी के रूप में, एक नेता के रूप में अथवा एक अनुयायी के रूप में। स्वतंत्रता संघर्ष में स्त्री वर्ग की सहभागिता एक देशव्यापी प्रक्रिया थी। स्त्री वर्ग ने अपने सामाजिक तथा पारिवारिक कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुए राष्ट्रीय आंदोलन में हिस्सा लिया।
- राष्ट्रीय आंदोलन में स्त्रियों की सहभागिता को दो दृष्टिकोण से देखा जा सकता है- निष्क्रिय या परोक्ष भागीदारी, सक्रिय या प्रत्यक्ष भागीदारी।

जैसे कि पुरानी कहावत है, प्रत्येक सफल पुरुष के पीछे एक औरत का हाथ होता है। स्त्रियों के परोक्ष योगदान, जो कि काफी मूल्यवान एवं महत्त्वपूर्ण होता है, पर अक्सर ध्यान नहीं दिया जाता और इसको आँकने का कोई ठोस सबूत अथवा लिखित प्रपत्र भी नहीं होता, परंतु ये वे नारियाँ थीं जिन्होंने स्वतंत्रता सेनानियों को गुप्त रूप से आश्रय दिया, उनके सन्देश तथा हथियार गंतव्य स्थानों तक पहुँचाए, देश की स्वतंत्रता के लिये मर मिटने वाले शहीदों तथा नायकों की कहानियाँ सुनाकर बच्चों में वीरता की भावना भरी। ऐसे समय में जब राष्ट्रवादी साहित्य पर प्रतिबंध लगा हुआ था उन्होंने राष्ट्रवाद को सन्देश का एक संचार साधन प्रदान किया। स्त्री वर्ग की इस परोक्ष सहभागिता ने राष्ट्रवाद को एक नैतिक शक्ति प्रदान की, हालाँकि इसे औपचारिक रूप से कहीं मान्यता नहीं मिलती।

- इसी तरह अर्द्धराष्ट्रवादी मज़दूर एवं किसान संघर्षों में स्त्रियों की प्रत्यक्ष भागीदारी भी अदृश्य रही। हज़ारों स्त्रियों ने हड़तालों एवं प्रदर्शनों में हिस्सा लिया तथा मज़दूर-संघों एवं किसान सभाओं की सदस्य बनीं। इसके विपरीत **प्रत्यक्ष सहभागिता का अर्थ है** राष्ट्रीय अथवा स्थानीय नेताओं द्वारा समय-समय पर चलाए गए आंदोलनों में व्यक्तिगत स्तर पर भाग लेना। परंतु स्त्रियों की यह सहभागिता पुरुषों की अपेक्षा काफी सीमित थी, क्योंकि वे अपने सामाजिक तथा पारिवारिक कर्त्तव्यों के साथ बंधी हुई थीं।
- भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस की स्थापना के बाद भारतीय नारी की सामाजिक मुक्ति का प्रश्न राजनीतिक मुक्ति तथा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के साथ जुड़ गया। भारतीय स्त्रियों का राजनीतीकरण उस स्त्री बुद्धिजीवी वर्ग के माध्यम से हुआ जिन्होंने राष्ट्रीय साहित्य को आत्मसात् कर लिया था। इनमें से अधिकतर स्त्रियाँ 'नारी आंदोलन' एवं 'राष्ट्रीय आंदोलन' दोनों की नेता थीं।

अध्याय
22

संवैधानिक विकास
(Constitutional Development)

22.1 1861 का अधिनियम
22.2 1892 का अधिनियम
22.3 मॉर्ले-मिन्टो सुधार, 1909
22.4 मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार, 1919
22.5 1935 का अधिनियम

22.1 1861 का अधिनियम *(Act of 1861)*

मुख्य प्रावधान *(Important Provisions)*

- इसके द्वारा कानून निर्माण की प्रक्रिया में भारतीयों को शामिल करने की शुरुआत हुई। वायसराय कुछ भारतीयों को विस्तारित परिषद में गैर-सरकारी सदस्यों के रूप में नामांकित कर सकता था।
- इसी के तहत 1862 में लॉर्ड कैनिंग ने तीन भारतीयों- बनारस के राजा, पटियाला के महाराजा और सर दिनकर राव को विधानपरिषद के लिये मनोनीत किया।
- इस अधिनियम के द्वारा मद्रास एवं बंबई प्रेसिडेंसियों को विधायी शक्तियाँ पुनः देकर विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत की गई।
- बंगाल, उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांत तथा पंजाब में क्रमशः 1862, 1866 और 1897 में विधानपरिषदों का गठन हुआ।
- इस अधिनियम ने वायसराय को परिषद में कार्य-संचालन के लिये नियम और आदेश बनाने की अधिक शक्तियाँ दीं साथ ही लॉर्ड कैनिंग द्वारा प्रारंभ की गई पोर्टफोलियो प्रणाली को मान्यता प्रदान की गई।
- इसके अतिरिक्त 1861 के अधिनियम ने वायसराय को आपात स्थिति में बिना कांउसिल की संस्तुति के अध्यादेश जारी करने की शक्ति प्रदान की।

इस तरह 1861 के इंडियन काउंसिल एक्ट ने कानून के लिहाज़ से गवर्नर जनरल की कार्यपालिका परिषद का दायरा तो बड़ा कर दिया, किंतु सरकार की पूर्व अनुमति के बिना यह न तो बजट पर बहस कर सकती थी, न ही इसे वित्तीय मामलों पर और न ही किसी अन्य महत्त्वपूर्ण सरकारी विधेयक पर निर्णय का अधिकार था। यहाँ तक कि प्रशासनिक कार्यों पर भी विचार करने का अधिकार नहीं था। इसलिये भारत सरकार की सत्ता 1858 के पहले की ही तरह निरंकुश बनी रही।

ऐसे में यह प्रश्न उठता है कि विधानपरिषद में भारतीय सदस्यों की भूमिका क्या थी? ऐसा माना जाता है कि बहुत से ब्रिटिश अधिकारी एवं राजनीतिज्ञों को लगता था कि 1857 के विद्रोह का एक कारण यह भी था कि ब्रिटिश शासक भारतीयों के विचारों से अनभिज्ञ थे। इसलिये उनके विचारों को सरकार तक पहुँचाने के लिये उनके बीच का प्रतिनिधि सरकार में होना चाहिये।

किंतु व्यावहारिक रूप में ऐसा नहीं था क्योंकि एक तो विधानपरिषद में भारतीय सदस्यों की संख्या कम होती थी। उस पर भी इसमें रजवाड़ों के शासक या उनके कर्मचारियों, बड़े ज़मींदारों, बड़े व्यापारियों एवं अवकाश प्राप्त उच्च अधिकारियों को ही नियुक्ति में वरीयता दी जाती थी, जबकि राजनीतिक चेहरों या स्वाधीन विचारों के बुद्धिजीवियों को कम संख्या में ही प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाता था जैसे- सर सैय्यद अहमद खान, कृष्टो दास पाल, वी.एन. मांडलिक, के.एल. नुलका और रासबिहारी बोस। इस रूप में परिषद में ज़्यादातर सदस्य ऐसे होते थे जो न तो भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करते थे और न ही राष्ट्रवादी भावना का। इनमें से ज़्यादातर सदस्य सरकार का ही पक्ष लेते थे।

अध्याय
23

स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान वामपंथी आंदोलन
(Leftist Movement During the Freedom Struggle)

23.1 भारत में साम्यवादी दलों का विकास
23.2 कॉन्ग्रेस सोशलिस्ट पार्टी
23.3 कॉन्ग्रेस के अंदर वामपंथ

भारत में वामपंथी आंदोलन एशिया में सबसे पुराने आंदोलनों में से एक रहा है। भारत में वामपंथी विचारधारा का आगमन रूस में साम्यवादी क्रांति के परिणामस्वरूप हुआ। यहाँ एक अन्य विचारधारा मिल गई और वह थी राष्ट्रवाद। राजनीतिक स्वतंत्रता के रूप में राष्ट्रवाद तथा आर्थिक मुक्ति के लिये संघर्ष के रूप में समाजवाद के उद्देश्य एक-दूसरे के साथ जुड़ गए। साम्यवाद की साम्राज्यवाद विरोधी प्रकृति के कारण भारत में इसका स्वागत किया गया। इसके अलावा समाजवादी विचारधारा राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस की युवा पीढ़ी के प्रतीक जवाहरलाल नेहरू तथा सुभाष चन्द्र बोस की भी प्राथमिक या पसंदीदा विचारधारा बन गई। वामपंथी आंदोलन के अध्ययन के क्रम में साम्यवादी विचारधारा का उदय तथा विकास, कॉन्ग्रेस के भीतर स्थापित कॉन्ग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की विचारधारा तथा गतिविधियाँ तथा अन्य वामपंथी दलों एवं गुटों की राष्ट्रीय आंदोलन में भूमिका तथा योगदान की चर्चा करेंगे।

23.1 भारत में साम्यवादी दलों का विकास
(Development of Communist Parties in India)

- भारत में साम्यवादी तथा समाजवादी विचारों का प्रसार रूसी क्रांति के बाद आरम्भ हुआ। रूस में समाजवादी सरकार की स्थापना ने साम्राज्यवाद से जूझ रहे एशिया के औपनिवेशिक संसार में एक नई चेतना का संचार किया। भारत में साम्यवाद की जड़ें, राष्ट्रीय आंदोलन में ही अन्तर्निहित थीं। 1920 के दशक में निराश क्रांतिकारी, असहयोग आंदोलनकारी, खिलाफत आंदोलनकारी तथा किसान मज़दूर कार्यकर्त्ता राजनीतिक एवं सामाजिक मुक्ति के लिये नए रास्तों की तलाश कर रहे थे।
- भारत के साम्यवादी दल के संस्थापक एम. एन. राय थे जो 1919 में मैक्सिको में एक रूसी बोल्शेविक क्रांतिकारी 'मिखाईल बोरोडीन' (Mikhail Borodin) के संपर्क में आए तथा कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की दूसरी कॉन्ग्रेस में भाग लेने के लिये मॉस्को गए। 17 अक्तूबर, 1920 को ताशकन्द में राय ने कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (सी.पी.आई.) की स्थापना की। ताशकन्द में राय के अन्य क्रांतिकारी सहयोगी थे, अबनि मुखर्जी, एम.पी.बी.टी. आचार्य, ए.टी. राय, रोजा फिटिंगॉफ (Rosa Fitingof: अबनि मुखर्जी की पत्नी), मोहम्मद अली (अहमद हसन) तथा मोहम्मद शफीक, जो हथियार खरीदने अथवा खिलाफत आंदोलन के संदर्भ में वहाँ पहुँचे थे।
- ब्रिटिश सरकार भारत में साम्यवादी विचारों के प्रचार के विरुद्ध थी। जब साम्यवादी दल के कुछ सदस्यों ने अफगानिस्तान के रास्ते भारत में प्रवेश करने की कोशिश की तो उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। ब्रिटिश राज़ के विरुद्ध षड्यंत्र रचने के जुर्म में उन पर पेशावर षड्यंत्र केस के नाम से मुकदमा चलाया गया तथा कड़ी सज़ा दी गई। भारत में साम्यवादी गतिविधियाँ एम.एन. राय द्वारा विदेश से ही नियंत्रित होती रहीं तथा वे कम्युनिस्ट इंटरनेशनल (कोमिनटर्न) को भारत की स्थिति से अवगत करवाते रहे।
- वामपंथी पत्रिकाओं ने लेनिन तथा रूस पर लेख प्रकाशित करने शुरू कर दिये थे जिनमें कलकत्ता से 'आत्मशक्ति' तथा 'धूमकेतु', गुंटूर से 'नवयुग' तथा लाहौर से 'इन्कलाब' काफी लोकप्रिय पत्रिकाएँ थीं। अगस्त 1922 में एस.ए. डांगे ने बंबई में 'सोशलिस्ट' नाम से साप्ताहिक पत्रिका प्रकाशित करनी आरम्भ की। इन सभी पत्रिकाओं तथा लेखों का उद्देश्य साम्यवादी विचारों को जनता तक पहुँचाना था।
- ब्रिटिश दमन से बचने के लिये नवम्बर 1922 में एम.एन. राय ने एक दोहरे संगठन का प्रस्ताव रखा- (i) मज़दूर किसानों की एक औपचारिक कानूनी पार्टी (ii) एक गोपनीय साम्यवादी केंद्र जो इन मज़दूर-किसान दलों के व्यापक ढाँचे के बीच कार्य करेगा। परिणामस्वरूप 1923 में मलयपुरम सिंगारवेलु चेट्टियार (M.S. Chettiyar) ने एक लेबर

अध्याय
24

मज़दूर संघ एवं स्वतंत्रता आंदोलन
(Labour Union and Freedom Movement)

24.1 ब्रिटिश भारत में मज़दूर संघ का विकास
24.2 मज़दूर संघ एवं वामपंथी विचारधारा
24.3 एटक का विभाजन

24.1 ब्रिटिश भारत में मज़दूर संघ का विकास
(Development of Labour Union in British India)

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कपड़ा उद्योग और अन्य उपभोक्ता वस्तुओं तथा इस्पात उद्योग की शुरुआत के बावजूद औद्योगीकरण की गति बहुत धीमी थी और देश मुख्यत: कृषि प्रधान ही था। भारत में जो औद्योगिक विकास हुआ था, वह भारतीय न होकर ब्रिटिश अधिक था। यह एक विचित्र बात थी कि ब्रिटिश पूंजी, उद्यम प्रबन्ध-कुशलता और तकनीकी दक्षता द्वारा भारतीय श्रम और कच्चे माल की सहायता से भारी मुनाफा कमाया जाता था और उसे ब्रिटेन भेज दिया जाता था। भारतीय मज़दूर अपने ब्रिटेन मालिकों के लिये एड़ी-चोटी का पसीना एक करते थे ताकि मालिकों की थैलियाँ भरती रहें व उनकी नौकरी सलामत रहे। यहाँ सर्वप्रथम भारतीय मज़दूरों के अपने मालिकों के लिये एड़ी-चोटी के पसीने का आकलन करना उचित होगा। ए.आर. देसाई ने मज़दूर वर्ग में उन किसानों और शिल्पकारों को शामिल किया है, जो अपने पैतृक व्यवसाय के नष्ट होने के कारण मज़दूरी करने लगे थे। दूसरे शब्दों में, कैसी भी जटिल परिस्थितियाँ क्यों न हों उनके लिये मज़दूरी करने के अतिरिक्त कोई विकल्प न था। आधुनिक उद्योगों में मज़दूर वर्ग को प्रारम्भ में अर्द्धनग्न स्थिति में ही काम करना पड़ता था। 15 से 16 घण्टे तक काम लेकर बहुत कम मज़दूरी दी जाती और बाल मज़दूरों एवं महिलाओं को प्रताड़ित किया जाना आम बात थी। कारखानों एवं खदानों में मज़दूर अमानुषिक परिस्थितियों में रहते थे चाहे मालिक हो या अंग्रेज़ कोयला कारखानों में कामकाज़ की हालत के संबंध में कर्ज़न की छानबीन, स्त्रियों और बच्चों की मज़दूरी के काम पर लगाने के आँकड़े और संसदीय दस्तावेज़ इस बात के साक्षी हैं कि उद्योगों में श्रमिकों के साथ कितना क्रूर व्यवहार किया जाता था। कपास ओटने, दबाने के कारखानों में चौदह एवं पंद्रह और कभी-कभी अठारह घण्टे प्रतिदिन स्त्री-पुरुष मज़दूरों को काम पर लगाए रखना आम बात थी। सवेरे चार बजे से रात दस बजे तक लगातार काम में लगे मज़दूर को तीन-चार आना प्रतिदिन की मज़दूरी मिलती थी।

- 1921 में श्री फिडले शिराज ने बम्बई के मज़दूरों की मासिक आय-व्यय की जाँच के बाद बताया था कि औद्योगिक मज़दूर उतना ही अनाज खाता है, जितना अकाल संहिता के अन्तर्गत सरकार अकाल पीड़ितों को देती है, लेकिन बम्बई की जेल संहिता के अन्तर्गत कैदियों को जितना भोजन दिया जाता है, मज़दूरों को उससे भी कम अनाज मिल पाता है।
- मज़दूरों के आवासों की स्थिति भी अच्छी नहीं थी। 1928 में ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कॉन्ग्रेस के प्रतिनिधिमण्डल ने मज़दूरों के आवासों के बारे में कहा था- "मालिक इन मकानों के किराए के रूप में प्रतिमाह 5 शिलिंग 6 पेंस लेते हैं। मकान के नाम पर यह 9 फीट लम्बी और 9 फीट चौड़ी एक अंधेरी कोठरी है। इन कोठरियों के बाहर एक लम्बी सँकरी नाली है, जिसमें हर तरह का कूड़ा-कचरा डाला जाता है और जिस पर ढेर सारी मक्खियाँ भिनभिनाती रहती हैं। गलियों के लोग, खासतौर से बच्चे शौचालय के रूप में इनका इस्तेमाल करते हैं।"
- मज़दूरों के जीवन के किसी भी पक्ष को लिया जाए तो यह नहीं कहा जा सकता है कि उस दृष्टि से जीने की आकांक्षा बनी रहती होगी। कुछ कारखाने तो छुट्टी करते ही नहीं थे। वे तो यह आशा करते थे कि कर्मचारी खाना खाते समय भी मशीनों की चौकसी करें। 1885 के 'बांबे फैक्टरी लेबर कमीशन' ने टिप्पणी की कि भारत के कारखानों में सारे वर्ष में दी जाने वाली छुट्टियाँ औसतन पन्द्रह हैं, जबकि इंग्लैण्ड में 10 अवकाश के अतिरिक्त 52 रविवारों की छुट्टी और 52 शनिवारों की आधी छुट्टी रहती है। इसका परिणाम यह हुआ कि श्रमिकों की शारीरिक शक्ति पूर्णत: क्षीण

अध्याय
25

स्वतंत्रता तथा भारत का विभाजन (Freedom and Partition of India)

25.1 माउंटबेटन का भारत आगमन
25.2 माउंटबेटन योजना
25.3 ठहराव समझौता एवं अधिमिलन प्रपत्र
25.4 भारत स्वतंत्रता अधिनियम, 1947
25.5 विभाजन : एक मूल्यांकन

25.1 माउंटबेटन का भारत आगमन *(Arrival of Mountbatten in India)*

- माउंटबेटन को जून 1948 तक भारत में ब्रिटिश शासन समाप्त करने के निश्चित उद्देश्य से भारत भेजा गया। अपनी नियुक्ति से पहले उन्होंने ब्रिटिश सरकार के सामने कुछ शर्तें रखीं।
- पहली, सत्ता के हस्तांतरण के लिये एक तिथि निश्चित की जाए। एटली ने इसे मंजूर कर लिया और अपनी घोषणा में इसका ज़िक्र किया।
- दूसरी, अपनी योजना को कार्यान्वित करने के लिये उसे पूरी शक्तियाँ दी जाएँ। पूर्व के वायसरायों की अपेक्षा माउंटबेटन को कार्य करने की अधिक स्वतंत्रता दी गई। हालाँकि, उसे अपनी योजना में हो रही प्रगति के बारे में लन्दन को नियमित रूप से सूचित करना था। यदि वह पूर्व वायसरायों की अपेक्षा निर्णय लेने में अधिक निश्चयात्मक तथा शीघ्रगामी था तो इसका कारण यह था कि ब्रिटिश सरकार ने उसे अनौपचारिक तौर पर तत्काल फैसला लेने की शक्ति दे रखी थी। इन शक्तियों की वजह से वह विभिन्न दलों के साथ बातचीत करने, उन्हें मनाने, तुरंत निर्णय लेने तथा उन्हें कार्यान्वित करने में सफल हो गया। इन सबके पीछे महत्त्वपूर्ण कारण था शीघ्रातिशीघ्र भारत छोड़ने का पक्का फैसला, क्योंकि इसके अलावा दूसरा एकमात्र विकल्प था ज़ोर-ज़बरदस्ती और दमन से लोगों को अपने अधीन रखना, जो कि उन परिस्थितियों में अव्यावहारिक था।
- ब्रिटिश प्रधानमन्त्री से प्राप्त हुए आदेश-पत्र (Letter of Instruction) में माउंटबेटन को भारत की परिस्थिति से निपटने के लिये इन बातों का ध्यान रखने के लिये कहा गया:
  - वह कोशिश करे कि कैबिनेट मिशन प्लान के अनुसार एक भारतीय सरकार का गठन किया जाए।
  - यदि 1 अक्तूबर, 1947 तक यह संभव न हो तो वह लन्दन को सूचित करे कि जून 1948 तक सत्ता हस्तांतरण के लिये कौन-से कदम उठाना आवश्यक हैं।
  - सत्ता हस्तांतरण की तिथि से पहले वह रियासतों पर ब्रिटिश प्रभुसत्ता तथा उत्तरदायित्व को किसी भारतीय सरकार को न सौंपें।
  - अंतरिम सरकार को एक डोमिनियन सरकार का दर्जा दिया जाए तथा इसे प्रशासन में अधिकतम स्वायत्तता दी जाए।
  - इस बात का विशेष ध्यान रखा जाए कि सत्ता के हस्तांतरण का भारत की सुरक्षा तथा हिन्द महासागर में ब्रिटिश हितों की सुरक्षा पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।
  - भारतीय नेताओं के साथ अधिकतम सहयोग किया जाए।

भारत आने के बाद माउंटबेटन के सामने निम्नलिखित दो विकल्प बड़े स्पष्ट थे:

1. भारत की अखण्डता को बरकरार रखा जाए, परंतु भारत के प्रांतों को अधिकतम स्वायत्तता दे दी जाए और उन्हें अपने-अपने संविधानों के साथ एक उपसंघ में संगठित कर दिया जाए।
2. बहुसंख्यक समुदाय वाले क्षेत्रों को आधार मानकर भारत को दो प्रभुसत्ताधारी राज्यों में बाँट दिया जाए।

इसके लिये पंजाब, बंगाल तथा आसाम का विभाजन ज़रूरी था। विभिन्न राजनीतिक दलों के विचार जानने के लिये माउंटबेटन 24 मार्च से मध्य अप्रैल तक विभिन्न नेताओं से मिलते रहे। इसके बाद माउंटबेटन ने प्रांतों के गवर्नरों का एक सम्मेलन बुलाया और इस विषय पर अपने सहयोगियों से भी सलाह-मशविरा किया। इनमें महत्त्वपूर्ण सलाहकार थे : इस्मे

अध्याय
26

वैज्ञानिक और तकनीकी उपलब्धियाँ
(Scientific & Technological Achievements)

26.1 वैज्ञानिक उपलब्धियाँ एवं तकनीकी विकास
26.2 अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी में उपलब्धियाँ
26.3 सूचना तकनीक
26.4 भारत में परमाणु कार्यक्रम का विकास
26.5 उच्च प्रौद्योगिकी विकास

स्वतंत्रता के पूर्व भारत आर्थिक रूप से ही दरिद्र नहीं हुआ, बल्कि विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में भी पिछड़ेपन की स्थिति बनी रही। स्वतंत्रता के पश्चात् वैज्ञानिक और तकनीकी विकास एक राष्ट्रीय आवश्यकता बन गई। स्वतंत्र भारत के विकास का जो लक्ष्य व प्रारूप तैयार किया गया उसे पूरा करने के लिये विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में विकास अनिवार्य था। इसका सीधा संबंध आर्थिक व औद्योगिक प्रक्रिया से होता है। तकनीकी और विज्ञान के अभाव में कृषि और उद्योगों के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। यदि भारत को आत्मनिर्भर सबल राष्ट्र के रूप में आगे बढ़ना था तो उसके लिये विज्ञान और तकनीकी का विस्तार व विकास आवश्यक था। विज्ञान-तकनीकी का संबंध सामाजिक, शैक्षणिक एवं बौद्धिक प्रगति से आवश्यक तौर पर जुड़ा हुआ है। दोनों ही एक-दूसरे को विकास करने में सहायता प्रदान करते हैं। यदि समाज में शिक्षा व बौद्धिकता का विकास होता है, तो विज्ञान व तकनीकी का विकास स्वाभाविक तौर पर होता है। इसी प्रकार विज्ञान व तकनीकी का विकास राष्ट्र के निवासियों में वैज्ञानिक सोच और वैज्ञानिक बौद्धिकता को बढ़ाता है।

विज्ञान-तकनीकी का विकास सामाजिक उत्थान एवं परिवर्तन को गतिशील बनाता है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को विज्ञान का पुजारी माना जाता है, जिन्होंने देश को वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान की। नेहरू जी की रुचि इस भौतिक संसार में थी। वे पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य किसी परलोक में विश्वास नहीं करते थे एवं मानव के पुनर्जन्म जैसी कल्पना पर उन्हें कोई भरोसा नहीं था, इसीलिये नेहरू जी आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग-नरक जैसी मान्यताओं को दिमागी अटकल और तुक्केबाज़ी मानते थे। उनके अनुसार ये सभी मान्यताएँ मानव को आगे बढ़ाने की बजाय पीछे धकेलने वाली होती हैं। तंत्र-मंत्र, जादू-टोना, भूत-प्रेत इत्यादि को बेतुके धंधे मानते हुए नेहरू जी ने इनका खंडन और विरोध किया। विज्ञान शुद्ध भौतिक आधारों को विकसित करने वाला होता है और इसमें आध्यात्मिकता का कोई स्थान नहीं होता। विज्ञान के विकास के साथ-साथ संपूर्ण संसार का मानव समाज अज्ञान और अंधविश्वास से मुक्ति प्राप्त कर सका है। कल्पना को यदि व्यावहारिक और मूर्त रूप प्रदान कर दिया जाए तो वह विज्ञान भी बन सकती है, किन्तु कोरी कल्पना एवं मानसिक स्थिति के सापेक्ष परिणाम संदिग्ध ही नहीं बल्कि असंभव होते हैं।

भारत में वैज्ञानिक विकास की प्राचीन परंपरा रही है। हाँ, यह बात अवश्य जानने योग्य है कि भारत में औपनिवेशिक शासन की स्थापना ने यहाँ की स्वाभाविक (प्राकृतिक) वैज्ञानिक विकास की परंपरा को अवरुद्ध किया। इसमें दो राय नहीं कि जब भारत में अंग्रेज़ी शासन की स्थापना हुई तो भारत वैज्ञानिक दृष्टि से काफी आगे बढ़ा हुआ था। वह विज्ञान और तकनीकी की दृष्टि से आत्मनिर्भर देश था। भारत से की गई आर्थिक लूट से इंग्लैंड बहुत आगे पहुँच गया। 1850 के पश्चात् इंग्लैंड की वैज्ञानिक और तकनीकी उपलब्धियों का आंशिक लाभ भारत को भी मिलने लगा। यहाँ रेलों की स्थापना, उद्योगों की स्थापना, संचार साधनों का विकास, सड़क यातायात और परिवहन इत्यादि के रूपों में पश्चिमी विज्ञान का प्रवेश हुआ। हालाँकि, इसका जितना लाभ मिलना चाहिये था, वह नहीं मिला। परंपरागत तौर से विकसित भारतीय विज्ञान और तकनीकी के ऊपर इंग्लैंड की विकसित तकनीकी थोप देने से भारत में तकनीकी का मौलिक विकास नहीं हो सका। विभिन्न माध्यमों से भारतीय सम्पदा के निष्कासन ने भारत में आर्थिक विपन्नता को बढ़ावा दिया। जिसके चलते भारत विज्ञान-तकनीकी का विकसित ढाँचा तैयार नहीं कर सका।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय देश का वैज्ञानिक व तकनीकी ढाँचा विकसित देशों की तुलना में व्यवस्थित व सुदृढ़ नहीं था। इस हेतु भारत विदेशी तकनीकी कौशल व विशेषज्ञता पर निर्भर था। यह निर्भरता उसे अंग्रेज़ी साम्राज्य से विरासत में मिली। अतः स्वतंत्रता के पश्चात् विज्ञान और तकनीकी के विकास को प्राथमिकता प्रदान की गई। देश का विकास और आज़ादी की रक्षा हेतु आत्मनिर्भरता बढ़ाने पर ज़ोर दिया गया। विज्ञान-तकनीकी के क्षेत्र में विकसित देशों पर निर्भर रहना जीती

अध्याय
27

नेहरू की विदेश नीति : गुटनिरपेक्षता एवं पंचशील (Nehru's Foreign Policy : Non-alignment and Panchsheel)

27.1 ब्रिटिश भारत की विदेश नीति	27.3 गुटनिरपेक्ष आंदोलन
27.2 नेहरू की विदेश नीति की विशेषताएँ	27.4 पंचशील का सिद्धांत

27.1 ब्रिटिश भारत की विदेश नीति *(Foreign Policy of British India)*

स्वतंत्रता के पूर्व विदेश नीति के क्षेत्र में इंग्लैंड ही भारत का भाग्य विधाता था। प्रथम विश्वयुद्ध में अंग्रेज़ों ने भारत के मानवीय एवं भौतिक संसाधन निर्दयतापूर्वक झोंक दिये थे। स्वतंत्रता सेनानियों का एक तबका अंग्रेज़ों के युद्ध प्रयासों में सहायक था। प्रथम विश्वयुद्ध के विध्वंसात्मक परिणाम भारत को भी भोगने पड़े। इसके अनेक दुष्प्रभाव भारतीय राजनीति, समाज, अर्थव्यवस्था एवं विदेश नीति पर दिखाई दिये। इसके कुछ अच्छे प्रभाव भी रहे। सबसे लाभकारी प्रभाव इन अर्थों में रहा कि भारत आधुनिक विश्व समुदाय का हिस्सा बन गया। अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं में आंशिक तौर पर भारत को भागीदारी प्राप्त हुई। 1919 में आयोजित पेरिस के शांति सम्मेलन में भारत को सीधी भागीदारी नहीं मिली, किन्तु इससे संबंधित अनेक मुद्दों पर चर्चा अवश्य हुई। राष्ट्र संघ की विभिन्न संस्थाओं, विशेषकर अंतर्राष्ट्रीय श्रम संघ, सामाजिक-आर्थिक परिषद, विश्व स्वास्थ्य संगठन एवं अन्य अंतर्राष्ट्रीय मानव कल्याण से संबंधित संस्थाओं के माध्यम से भारत अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व के सभी देशों के साथ जुड़ने लगा।

भारत के स्वतंत्रता सेनानी भारतीय विदेश नीति और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों पर विचार करने लगे। द्वितीय विश्वयुद्ध भी प्रथम विश्वयुद्ध की तरह साम्राज्यवादी हितों को लेकर लड़ा गया। पुनः भारत को अंग्रेज़ों ने द्वितीय विश्वयुद्ध में सम्मिलित कर लिया। अखिल भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस ने भारत को इस युद्ध में झोंकने का विरोध किया। इतना ही नहीं, विभिन्न प्रांतों में 1937 में गठित कॉन्ग्रेस सरकारों ने 1939 में युद्ध आरंभ होने के साथ विरोधस्वरूप इस्तीफा दे दिया। जगह-जगह युद्ध-विरोधी प्रदर्शन हुए। इस विरोध की चरम परिणति 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के रूप में हुई। गांधी ने 'करो या मरो' का नारा दिया। उच्च कॉन्ग्रेस नेतृत्व के सदस्यों की गिरफ्तारी के कारण 1942 के आंदोलन ने एक हिंसक और विध्वंसात्मक क्रांति का रूप धारण कर लिया। इस समय भारत की आम जनता अंतर्राष्ट्रीय विषयों में रुचि लेने लगी। यह बात भली-भाँति समझ में आ चुकी थी कि भारत की आज़ादी में अंतर्राष्ट्रीय तत्त्वों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। यह बात सच भी साबित हुई और 1945 में द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के साथ ही भारत की आज़ादी की प्रक्रिया तीव्र हो गई। कॉन्ग्रेस ने आज़ादी के पूर्व ही भारतीय स्वतंत्रता में सहायक देशों एवं अंतर्राष्ट्रीय नेताओं के साथ अच्छे संबंध कायम कर लिये थे। यहीं से भारत की विदेश नीति की मज़बूत नींव पड़ गई थी।

1947 में स्वतंत्रता के बाद भारत की स्वतंत्र विदेश नीति आरंभ हुई। कॉन्ग्रेस जो भारत की आज़ादी का अग्रणी संगठन था, उसे भारत सरकार का पर्याय माना जा रहा था। कॉन्ग्रेस आज़ादी के पूर्व इसी प्रकार का आचरण कर रही थी एवं सभी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर भारत का उचित प्रतिनिधित्व कर रही थी। इस संबंध में प्रो. बिपिन चंद्र लिखते हैं, स्वतंत्र विदेश नीति पर चलने का प्रयत्न 1947 के बाद की भारतीय राजनीति की विशेषता थी। यह लंबे इतिहास और हाल की घटनाओं की परिणति थी। इसमें निरंतरता और एक जैसी विचार प्रक्रिया पाई जाती है। वैश्विक परिस्थितियों में क्रांतिकारी परिवर्तनों के उपरान्त आज़ादी के संघर्ष और आज़ादी के प्रारंभिक वर्षों में विकसित विशेषताएँ बाद तक बनी रहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत की विदेश नीति 1947 से पूर्व ही आरंभ हो गई थी अथवा स्वतंत्र भारत की विदेश नीति की नींव स्वतंत्रता के पूर्व ही रखी जा चुकी थी। भारत की दासता अंतर्राष्ट्रीय उपनिवेशवादी व्यवस्था का परिणाम थी।

दुनिया में भारत जैसे अनेक देश औपनिवेशिक शोषण के शिकार थे। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को भारतीय विदेश नीति का 'चितेरा' माना जाता है। उनकी अंतर्राष्ट्रीय संबंध के क्षेत्र में यह समझ साफ थी कि भारत के पास

डी.एल.पी. बुकलेट्स की विशेषताएँ

- आयोग के नवीनतम पैटर्न पर आधारित अध्ययन सामग्री।
- पैराग्राफ, बुलेट फॉर्म, सारणी, फ्लोचार्ट तथा मानचित्र का उपयुक्त समावेश।
- विषयवस्तु की सरलता, प्रामाणिकता तथा परीक्षा की दृष्टि से उपयोगिता पर विशेष ध्यान।
- प्रत्येक अध्याय के अंत में विगत वर्षों में पूछे गए एवं संभावित प्रश्नों का समावेश।

Website : www.drishtiIAS.com
E-mail : online@groupdrishti.com

DrishtiIAS

YouTube Drishti IAS

drishtiias

drishtithevisionfoundation

641, First Floor, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-110009
Phones : 011-47532596, +91-8130392354, 813039235456